

# प्राचीन भारतीय मूर्तिकला को मालवा की देन

□ डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित

[ १२, वीर दुर्गादास मार्ग, उज्जैन (म० प्र०) ]

किसी भी देश की संस्कृति का दर्पण वहाँ की कला होती है। भारतीय कला भी यहाँ के युगयुगीन जीवन का दर्पण है। धर्म तथा दर्शन, अर्थ तथा काम, सौन्दर्य तथा कुरूपता, बौद्धिकता एवं सहृदयता, मानव-प्रकृति तथा दृश्य-प्रकृति, राजा तथा प्रजा, युद्ध एवं शान्ति, स्वामी तथा मजदूर, जड़ एवं चेतन, दर्शनों की गम्भीरता तथा विदूषकी हास्य-व्यंग्य, सदाचार का आदर्श तथा विषयों का चरम विलास, योग तथा भोग, चरम निराशा एवं प्रखर कलाविलास इत्यादि निखिल जगत की प्रवृत्तियों तथा उपलब्धियों का अंकन भारतीय कला में, वैदिक, बौद्ध तथा जैन कलाओं में अवैर रूप से हुआ है। भारतीय सौन्दर्य के प्रतिमानों में भेद नहीं था, भारतीय जीवन के आदर्श तथा यथार्थ सब धर्मों में एक जैसे थे—यही कारण है कि धर्मभेद होते हुए भी वैदिक, बौद्ध तथा जैन कला में ये समान रूप से रूपायित हुए हैं। कलाकार जब दृढ़ समाधि होता है तो उसकी कला धर्म से परे, साधारणीकरण की परिधि में पहुँच जाती है जहाँ प्रत्येक सहृदय को अलौकिक आनन्द प्राप्त हो सके, वह रस दशा में पहुँच सके। नाट्य-प्रदर्शन के समान कला भी समस्त समाज के आनन्द के लिए निमित्त होती थी और द्रष्टा का उसमें डूब जाना ही उसकी सफलता का सार माना गया है। भारतीय दर्शनों के समान यहाँ के साहित्य तथा कला का आदर्श भी 'परमानन्द' की उपलब्धि रहा है। यहाँ श्रेष्ठ कला वह नहीं मानी गयी जो विलासिता की ओर उन्मुख करे। यही भारतीय एवं पश्चिमी कला में मूल अन्तर है—

विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता ।

लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला ॥

भारतीय मूर्तिकला कला का यह आदर्श एवं उपर्युक्त सम्भार लिए सजी, सँवरी तथा कलाकारों की अनवरत साधना की मूर्त सुन्दरता इनके माध्यम से हम तक पहुँच सकी।

इस देश की सभ्यता के ज्ञान के साथ ही यहाँ की कला से भी हमारा परिचय होता है। सिन्धु-सभ्यता से धातु एवं मिट्टी की बनी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुईं परन्तु उस काल की मालव-सभ्यता से ऐसी कोई स्मरणीय, मूर्ति उपलब्ध नहीं हो सकी। इसके बाद सदियों का अन्तराल है। मालवा ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय कला में

मध्यकालीन ऐसे उदाहरण उपलब्ध नहीं हुए जो सिन्धु सभ्यता से मौर्य युग तक की कला-परम्परा व्यक्त कर सकें।

मौर्य युग कला की समृद्ध परम्परा के साथ भारत भूमि पर अवतीर्ण होता है। देश के विभिन्न भागों से मौर्ययुगीन अद्वितीय कला के अवशेष उपलब्ध होते हैं। यह कला दो रूपों में प्रकट हुई—राजकीय एवं लोक-कला। विदिशा के निकट साँची से सम्राट् अशोक के द्वारा उच्छ्रित एक पाषाणस्तम्भ प्राप्त हुआ है। सारनाथ के समान यह भी सिंहशीर्षक है जहाँ चार सिंह पीठ सटाए बैठे हैं। शीषे-गोल चौकी की दीवाल पर चुगते हंसों की पंक्ति है जो रामपुरवा शीर्षक के सदृश है। बाराबर पर्वत के पाषाण से निर्मित इस स्तम्भ-मूर्ति की ओप अनोखी है जो समकाल में तो व्यापक प्राप्य है परन्तु उससे पहले तथा बाद में दुर्लभ रही। अशोकयुगीन एक खण्डित गजमूर्ति उज्जयिनी के निकट सोढंग<sup>१</sup> से उपलब्ध हुई जो अब विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित है।

राजकीय शिल्प से हटकर मौर्ययुगीन लोककला की परम्परा का प्रमाण इस युग की महाकाय यक्षमूर्तियों से प्राप्त होता है जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा तथा पाटलिपुत्र से शूर्पारक तक के सुविस्तृत क्षेत्र में पाई जाती हैं। इनका अपना व्यक्तित्व है जो अलग से पहचाना जा सकता है। अतिमानवी महाकाय ये मूर्तियाँ खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थीं। ये यक्ष-प्रतिमाएँ इस देश में व्यापक यक्ष-पूजा का साक्षात् प्रमाण हैं। वैदिक, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों में इनके प्रति समान आस्था थी और धर्म से परे तीनों धर्मों से सम्बद्ध कला में इनका पर्याप्त अंकन हुआ है। जिस प्रकार मथुरा जिले के परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष-प्रतिमा सुप्रथित है उसी प्रकार बेसनगर से प्राप्त यक्ष की १२ फीट ऊँची प्रतिमा अपनी महाकायता एवं सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। जिस प्रकार पटना के दीदारगंज की यक्षी की प्रतिमा अप्रतिम है उसी प्रकार बेसनगर से प्राप्त यक्षी भी अपनी उपलब्धि में अकेली है।

ये यक्षमूर्तियाँ महाकाय, समुन्नत तथा बलिष्ठता एवं दृढ़ता की द्योतक हैं। चतर्मुख-दर्शन होने पर भी सम्मुख-दर्शन से युक्त इन प्रतिमाओं के वेष में सिर पर पगड़ी, उत्तरीय जिसे वक्ष पर बाँधा गया, धोती जो कटि में मेखला से बँधी है, कानों में भारी कुंडल, गले में भारी कंठा, छाती पर चपटा त्रिकोना हार तथा बाहुओं पर

१ सोढंग—उज्जयिनी के समीपवर्ती इस ग्राम का नाम प्राचीन ताम्रपत्रों में बार-बार आए 'सोद्रंग' शब्द का विकार प्रतीत होता है। यह भी सम्भव है कि षोढंग नामक किसी विदेशी के नाम पर यह गाँव बसाया गया हो और उसका अपभ्रंश सोढंग हो गया हो। चीनी तुकिस्तान से प्राप्त लेखों में यह नाम अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन युग में उज्जयिनी में अनेक विदेशी लोग रहते थे।—दृष्टव्य डी० सी० सरकार द्वारा संपादित 'सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स' १९६५, पृ० २४४, ४६, ४८ इत्यादि।

भुजबन्ध हैं। ये मूर्तियाँ स्थूल अथवा घटोदर हैं। यक्षमूर्तियों की इस परम्परा का स्रोत अज्ञात है परन्तु जिस रूप तथा मात्रा में ये उपलब्ध हैं इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी समृद्ध परम्परा रही जो साहित्य में ही उपलब्ध है, मूर्त रूप में नहीं। सम्भवतः इससे पूर्व ये मूर्तियाँ मिट्टी अथवा काठ की बनती रही होंगी जो कालान्तर में नष्ट हो गयीं। इस युग के सम्पूर्ण साहित्य में यक्ष के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। भासकृत प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण के अनुसार वासवदत्ता उज्जयिनी में यक्षिणी की पूजा के लिए जाती है। हाँ, यक्ष-मूर्तियों की यह ऋद्ध-परम्परा शुंगकाल में अधिक व्यापक हो गयी।

शुंग युग में भरहुत तथा साँची के स्तूपों की वेदिकाएँ बनीं, तोरण द्वार बने और उन पर कलात्मक सौन्दर्य बिखर गया। बौद्धधर्म के प्रति जो आस्था जन-हृदय में विद्यमान थी वह पाषाणों पर उभरी परन्तु जनभावना में यक्ष-नाग इत्यादि जो लोकदेवता आसीन थे वे भी उसके साथ ही आकार ग्रहण करने लगे। फलतः यह मिश्रित कला भरहुत तथा साँची दो केन्द्रों में एक साथ पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई। इस युग में अलंकरण की अनेक परतें प्रकट हुईं। लक्ष्मी, पूर्णघट, उत्तरकुरु, धर्मचक्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, मकर, कच्छप, यक्ष-यक्षी, वृक्ष, स्तूप, अशोक स्तम्भों पर प्राप्त होने वाले वृषभ, सिंह, अश्व, हस्ती आदि पशुओं की पूजा, विविध देवी-देवता, देवप्रासाद, पुष्पमाला, कल्पलता, सरोवर इत्यादि अनेक अंकन धार्मिक मान्यता के साथ ही शोभाकारक भी थे।

शुंग-युग में विदिशा तथा साँची कला-वैभव से खचित हो गये। मथुरा से प्रतिष्ठान जाने वाले महापथ पर यह व्यापारिक केन्द्र था। विदिशा में विष्णु-मंदिर, गरुडध्वज तथा मकरध्वज एवं निधियों के द्योतक शंख तथा पद्म से शोभित कल्पवृक्ष का भी सुन्दर अंकन हुआ है। वस्तुतः यह कल्पवृक्ष, वटवृक्ष के रूप में अंकित हुआ है जिसकी झूलती जड़ों के मध्य निधि से पूर्ण एक पात्र, दो थैले, तथा शंख एवं पद्म दिखाए गए हैं। ५ फीट ८ इंच ऊँचा यह कुबेर के ध्वजस्तम्भ का शीर्षभाग अब कलकत्ता संग्रहालय में है।<sup>२</sup> साहित्य के सन्दर्भ में इस वटवृक्ष का विशेष महत्त्व है।

कालिदासकृत मेघदूत में विदिशा के 'ग्राम चैत्यों' का उल्लेख है। चैत्य पर यक्ष का निवास होता था। यह चैत्य या तो भवन के रूप में होता था अथवा वृक्ष। यह वृक्ष वटवृक्ष होता था। 'वटयक्ष' की चर्चा साहित्य में होती रहती है। स्पष्ट ही विदिशा का 'ग्रामचैत्य' यक्ष अथवा उसके अधिपति कुबेर के ही वासस्थान होने से मेघदूत में व्यक्त हुए हैं। प्रश्न उठता है कि विदिशा में ही उसका उल्लेख क्यों किया गया? इसका उत्तर हमें कला के इतिहास से प्राप्त होता है। विदिशा ई० पू० तीसरी सदी से ही, अशोक के समय से ही यक्ष एवं कुबेर की मूर्ति-स्थापना का केन्द्र रहा है। वहाँ मौर्य-शुंग युगीन खुले आकाश के तले खड़ी महाकाय मूर्तियाँ अनेक उपलब्ध होती हैं। प्रमुख

२ आनन्द के० कुमारस्वामी, यक्ष, भाग २, पृ० ७२ तथा प्लेट १ एवं ४६ (चित्र १-२)

वणिकपथ पर स्थित होने से वहाँ वैश्यों की बस्ती थी जिसे वैश्य नगर (बेसनगर) कहते थे। व्यापारियों की बस्ती में धन के देवता कुबेर एवं यक्ष की व्यापक पूजा-अर्चना अस्वाभाविक नहीं है। यही कारण है कि वहाँ इनकी महाकाय मूर्तियाँ पधरायी गयीं, इनके आयतन बने, ध्वजस्तम्भ बने, इन ध्वजस्तम्भों के शीर्षभाग पर विशाल एवं ऋद्धि प्रकट करते कल्पवृक्ष (वटवृक्ष) बने। वटवृक्ष पर यक्षों का वास होने से वहाँ के जनों की उस पर विशेष आस्था थी। पूर्वोक्त वटवृक्ष के नीचे शंख एवं पद्म भी अंकित हैं। कालिदास के मेघदूत (२।१७) में स्पष्ट संकेत है कि अलका में यक्ष के भवनद्वार के दोनों ओर शंख तथा पद्म का अंकन है—

द्वारोपान्ते लिखितवपुषी शंखपद्मौ च दृष्ट्वा ।

ये शंख एवं पद्म चरम निधियों के प्रतीक हैं। कर्नाटक के प्राचीन मंदिरों के द्वार के दोनों ओर इनकी मानवी आकृतियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। लक्ष्मीपति विष्णु के दो हाथों में शंख एवं पद्म का चित्रण भी निधिसम्पन्नता का द्योतन है। विदिशा में इन कल्पवृक्षों के अंकन के साथ ही विष्णु का आयतन एवं गरुडध्वज भी उच्छ्रित था जिसकी वणिजों के नगर में स्थिति अचरज नहीं। कालिदास ने चैत्य का संकेत कर अपने युग के विदिशा की समूची सभ्यता का उल्लेख कर दिया है—कला, समाज, अर्थ, धर्म सब कुछ व्यक्त हो गया।

साँची के सर्वाधिक महत्त्वशाली तीन स्तूपों में महास्तूप के चार तोरणद्वार अत्यन्त अलंकृत हैं। तृतीय स्तूप का एक तोरण है। इन तोरणों के सिरे पर, दो भारी स्तम्भों पर तीन-तीन धरणें हैं जिनके दोनों सिरे आवर्त से अलंकृत हैं। बीच में गजारोही तथा अश्वारोही हैं। यक्ष मूर्तियाँ तथा हाथी एवं सिंह के अग्रभाग हैं। उभयतः मुखीयक्षी, चामरग्राही यक्ष है। यहाँ बौद्धधर्म एवं लोकधर्म का समाहार हो गया है। कुछ ऐसा शिल्प है जिसकी पर्याप्त आवृति हुई एवं कुछ में बुद्ध की जीवन घटनाएँ, यक्ष मूर्तियाँ, पशुपक्षी, लता-फूल-पत्तियाँ इत्यादि का अंकन हुआ है। पीपल अथवा अश्वत्थ के रूप में सम्बोधि का अंकन कर पूजा के मनहर दृश्य उत्कीर्ण कर दिए हैं। बड़ेरियों के बीच बौनी यक्ष-मूर्तियाँ अंकित हैं। यहाँ उकेरे गए पशु वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार के हैं। पशुओं में अज, वृषभ, उष्ट्र, गज, सिंह एवं सिंहव्याल हैं। पूर्वी द्वार पर उदीच्यवेषधारी शक्र-तुषार अंकित हैं। यहाँ सपक्ष सिंह भी अंकित हैं जो भारत के बाहर भी पर्याप्त उकेरे गये। यहाँ फूल-पत्तियों का पर्याप्त अलंकरण है, विशेषतः कमल का।

दक्षिणी द्वार पर श्री लक्ष्मी का अंकन है जिसका दो गज घटाभिषेक कर रहे हैं। बीच की बड़ेरी पर स्तूप का दर्शन करने के लिए रथारूढ़ अशोक का अंकन हुआ है जिसके पीछे गजारोही एवं पदाति हैं। इसी द्वार के स्तम्भ की दूसरी बगड़ी पर अशोक द्वारा निर्मित, अश्वत्थ के चतुर्दिक बोधिधर प्रदर्शित हैं। परन्तु मुझाएँ बोधि को देख अशोक बेसुध बताये गये हैं। वीणा बजाती मिथुन मूर्ति भाजा के अनुरूप है। कल्पवृक्ष के नीचे मिथुन-नृत्य-दर्शन का आनन्द प्रदर्शित है।

उत्तरी द्वार तोरण की ऊपर की बड़ेरी पर दोनों ओर यक्ष एवं सपक्ष सिंह अंकित हैं। नीचली बड़ेरी पर सर्वोत्तम अंकन हुआ है। यहाँ नगरीय वास्तु, वेश, आभरण तथा अश्वयुक्त रथ एवं बाँए स्तम्भ पर जेतवन का दृश्य भरहुत के समान अंकित है। प्रसेनजित, पानगोष्ठी, वीणावादन इत्यादि भी अंकित हैं। स्तम्भ के बाहरी भाग पर अंकित सुवर्णयष्टि पर चार खूंटियों पर झूलती सुवर्णमालाएँ आकर्षक रूप में व्यक्त हुई हैं। यहाँ बौद्ध एवं लोक धर्म का अद्भुत समन्वय हुआ है।

पूर्वी द्वार के तोरण के उत्कीर्णन में तरलता की अधिकता है। बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण तथा नगर की परिखा, प्राकार एवं द्वार प्रदर्शित हैं। दाहिने स्तम्भ भाग के सामने विविध लोक उत्कीर्ण हुए हैं। इस पर महाकपि जातक भी सफलता से अंकित हुआ है। उत्तरकुरु के स्वर्गीय आनन्दमय जीवन का भी वहाँ पर्याप्त अंकन हुआ है। दक्षिण तथा पश्चिमी द्वारों की कला ने परवर्ती माथुरी कुषाण शैली को प्रथापित किया है।<sup>३</sup> दक्षिण द्वार का निर्माण विदिशा के गजदन्त-कलाकारों ने किया था तथा उनकी ही बारीक कला उस पर अंकित हुई है। इसके निर्माण में उज्जयिनी के श्रेष्ठि वर्ग का भी योगदान रहा।

द्वितीय स्तूप की वेदिका पर अनेक दृश्य अंकित हैं। यक्ष-यक्षी, अश्वमच्छ, किन्नरमिथुन तथा सर्वाधिक कमल शोभित हैं। ये ईसवी पूर्व दूसरी सदी के अन्त में निर्मित हुए हैं। यहाँ एक मनोरम अंकन में कमलवल्लरी प्रदर्शित है जिसमें दो गजों द्वारा घटाभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, नीचे यक्षमिथुन जिनमें से यक्ष के हाथ में पद्म-प्रदर्शित है जो स्वभावतः उसकी चरम ऋद्धि का प्रतीक है। ये दोनों कमल-पत्र पर खड़े हैं जो उनके जलप्रेम को प्रकट करता है। नीचे अगले दोनों पैर उठाए सिंह, और भी नीचे वैसे ही दो अश्व तथा सबसे नीचे कच्छप है जिसके मुख से लहराती निकली कमल लता में उपर्युक्त दृश्य क्रमशः अंकित हैं। यहाँ कमल का अनन्त रूप में अंकन हुआ है। उत्तरकुरु का अंकन यहाँ भी हुआ है। किनारों का भी मनहर अंकन है। यही किन्नर बाद में हमशीर्ष देवता बना जो विष्णु के अवतार के रूप में अर्चित हुआ। इन्हें अश्वमुखी यक्ष-यक्षी भी कहा जाता रहा।

तृतीय स्तूप के द्वार पर यक्ष-यक्षिणी, अश्वारोही, त्रिरत्न, धर्मचक्र इत्यादि उत्कीर्ण हैं।

विदिशा के निकट उदयगिरि पहाड़ी पर कनिंघम को कई मौर्य-शुंगयुगीन अवशेष प्राप्त हुए थे जिनमें से कई लुप्त हो गए तथा कई ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित हैं।<sup>४</sup> एक ८ फीट ६ इंच ऊँचा गोल स्तम्भ खण्ड मौर्ययुगीन ओपरहित होने पर भी अशोक के कई अन्य स्तम्भों से आकृति में मिलता है तथा पाषाण भी वही।

३ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० २०५

४ द्विवेदी बन्धु, मध्यभारत का इतिहास, भाग १, पृ० ३२८-२९

कमलाकृति अर्धभग्न, रस्सी का कण्ठा, ऊपर सादी पट्टी, तब गोल चौकी, जिसके चारों ओर बैल, हाथी, सपक्ष ऊँट, सपक्ष अश्व, जिराफ, दाढ़ीयुक्त मानवमुख, सपक्ष सिंह इत्यादि उभरे हैं। लुहांगी पहाड़ी से प्राप्त स्तम्भ-शीर्ष भी ओपरहित होने पर भी मौर्य युगीन ही माना गया है। इसका शीर्ष रमपुरवा के स्तम्भशीर्ष के समान अलंकृत है तथा उस पर दो सिंह एवं दो हाथी एक के बाद एक बैठे थे जिनके अब केवल पैर बचे हैं।

उज्जयिनी में गढ़ के उत्खनन में प्राप्त स्लेट पत्थर पर उत्कीर्ण मूर्ति मौर्ययुगीन कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। साँची के दक्षिण में लगभग १२ फीट लम्बे विशालकाय अश्व एवं उसके निकट एक नाग राजा की भव्य मूर्ति है। इसके हाथ तथा मुख खण्डित हैं। निकट ही फिरोजपुर ग्राम में नाग राजा तथा रानी की मानवाकार मूर्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी अनेक मूर्तियाँ हैं जो आकर्षक हैं। द्विवेदीबन्धु के अनुसार<sup>५</sup> ये मूर्तियाँ तीसरी सदी में निर्मित हुई प्रतीत होती हैं।

विदिशा के प्रासादोत्तम विष्णु मन्दिर के अवशेषों के निकट से पूर्व गुप्तकालीन विष्णु की भग्न प्रतिमा प्राप्त हुई है। बाँयें हाथ में सिंहमुखी गदा है। प्रभामण्डल भी है। बेसनगर से स्तम्भ शीर्ष भी उपलब्ध होता है<sup>६</sup> जो मकरांकित है। मकरध्वज अथवा मकरकेतन के मन्दिर के उल्लेख उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र के सन्दर्भ में भी प्राप्त होते हैं।

उदयगिरि की वीणागुहा में शिवलिंग पर उभरी शिवमुख प्रतिमा गुप्तकाल से पहले की है। क्योंकि इसमें केवल तृतीय नेत्र ही प्रदर्शित है अन्य चन्द्रकला इत्यादि रुद्धि प्रदर्शित नहीं है जो गुप्तकालीन खोह तथा भूमरा के एकमुख शिवलिंगों में प्राप्त होती है। इस प्रतिमा की सौम्य मुद्रा हृदयाकर्षक है। सिर पर जटा जूड़े के रूप में बँधी है तथा कुछ केश गले तक झूल रहे हैं। गले में मणियों का कण्ठा भी है।

कालिदास ने जिस अष्टमुख शिव की अर्चना की है, उसकी अकेली मूर्ति दशपुर (मन्दसौर) से प्राप्त हुई है। ७-८ फीट ऊँचे शिवलिंग पर चार मुख ऊपर तथा चार उनके नीचे त्रिनेत्रमय उत्कीर्ण हैं। मुख अण्डाकार एवं सौम्य हैं।

बाघ-गुहाओं के द्वार के आसपास बोधिसत्व, कुबेर, यक्ष, द्वारपाल इत्यादि की विशाल प्रतिमाएँ निर्मित हैं। ये तब की हैं जब बुद्ध-प्रतिमा के लक्षण पूर्णतया निश्चित नहीं हुए थे। अर्थात् ये गुप्तकाल से पूर्व की ही प्रतीत होती हैं।

गुप्त युग की कला में शील, शक्ति तथा सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय है। अब आकृतियाँ सर्वथा स्वाभाविक हो गयीं। कलाकारों की छेनी ने जो सन्तुलन इस काल में प्रस्तुत किया वह न तो इससे पूर्व था और न बाद में रहा। अब मूर्तियाँ न तो शृंगकाल जैसी चपटी रहीं, न कुषाणकाल जैसी गोल, बल्कि गांधार शैली जैसी अंडाकार प्रकृत

५ विनोद बन्धु, मध्यभारत का इतिहास, भाग १, पृ० ४८२

६ वही, पृ० ६२४

हो गयी। अब कलाकार उन्हें कला के प्रतिष्ठित सौन्दर्य भावों से नहीं, सीधे प्रवाहित जीवन से लेने लगा।<sup>७</sup> जीवन की सरसता मूर्तिमती होने लगी। अलंकरण में न्यूनता आ गयी। स्वाभाविक सौन्दर्य विह्वल पड़ा। उदयगिरि की गुहा में वराह की १२ फीट ८ इंच ऊँची विशालकाय प्रतिमा अनायास पृथ्वी उठाते हुए शक्ति के प्रमाण सी प्रतीत होती है। छठी गुहा में चतुर्भुज विष्णु की दो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ५, ६, १०, ११ तथा १२वीं गुहा में भी विष्णु की खड़ी प्रतिमाएँ निर्मित हैं। परन्तु १३वीं गुहा में शेषशायी विष्णु की बारह फीट लम्बी प्रतिमा उत्कीर्ण है जिसमें सिर कोहनी से उठे हाथ की हथेली पर टिका है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य एवं मनोहर है। इसमें परितः गरुड़ प्रभृति अनुचर भी प्रदर्शित हैं। १६वीं गुहा में समुद्रमंथन प्रदर्शित है। बेसनगर से उपलब्ध नृसिंह की मूर्ति भी आकर्षक है।<sup>८</sup> उज्जैन के निकट कायथा से भी सूर्य की एक मनोहर मूर्ति प्राप्त हुई है।

उदयगिरि की तीसरी गुहा में स्कन्द की सुन्दर प्रतिमा है जिसके एक हाथ में दण्ड अथवा शक्ति तथा दो सिर हैं। दुमैन से प्राप्त प्रतिमा लघु पर आकर्षक है। तथैव कोटा से भी प्राप्त हुई है। उदयगिरि की ६वीं एवं १७वीं गुहा में गणेश की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। ६वीं एवं १७वीं गुहा में ही द्वादश-करा महिषमर्दिनी की प्रतिमा भी सुन्दर है। मन्दसौर में उड़ते गन्धर्व की प्रतिमा में भी आकर्षण है। इसी काल की यक्ष-यक्षी प्रतिमा विदिशा से प्राप्त हुई है।

बाघ एवं सांची में प्रदर्शित इस काल की बुद्ध प्रतिमाएँ युगानुरूप हृदयग्राहिणी नहीं बन पायीं।

उदयगिरि की बीसवीं गुहा में अवशिष्ट नागछत्र से प्रतीत होता है कि वहाँ पार्श्वनाथ की प्रतिमा रही होगी। कुछ वर्ष पूर्व विदिशा से तीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं—तीर्थंकर पुष्पदन्त की दो प्रतिमाएँ तथा चन्द्रप्रभु की एक प्रतिमा। इन प्रतिमाओं पर 'महाराजाधिराज रामगुप्त' का नाम भी उत्कीर्ण है।<sup>९</sup> मन्दसौर के खिलचीपुर तथा बाघ के द्वारपालों का अंकन भी अनोखा है।

गुप्तकाल तथा परमार युग के मध्यकाल की कला का मालवा में सतत क्रम प्राप्त नहीं होता। भोपाल के निकट भोजपुर में ७वीं-८वीं सदी की एक बुद्ध प्रतिमा है जो आभूषण मंडित भी है। धमनार की गुहाओं में भी बुद्ध की कई अज्ञात मुद्राएँ अंकित हैं। ग्यारसपुर में बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा प्रदर्शित है। मन्दसौर से पूर्व में लगभग १२ मील दूर अफजलपुर में उत्तर गुप्तकालीन पर्याप्त प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं। काले पत्थर से बनी इन मूर्तियों में अनोखा आकर्षण है। वहाँ भावसार के घर के आँगन में एक विशाल मूर्ति का मुख भाग दिखाई देता है जिसे मयूरध्वज की मूर्ति

७ डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, पृ० ६६

८ विक्रमस्मृति ग्रन्थ, पृ० ६६७

९ बड़ीदा प्राच्य शोध संस्थान का जर्नल, पृ० २५२

कहा जाता है। यह मूर्ति पर्याप्त अलंकृत है। एक अन्य बाड़े में कई मूर्तियाँ पड़ी हैं। जिनमें काले चिकने पाषाण की शालभंजिका आकर्षक है। इस गाँव का प्राचीन नाम मड़ है जो मठ का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यहाँ गाँव के दक्षिण में गोजाना गाँव तक विशाल भवनों की नीवें दिखाई देती हैं जो वहाँ मठ स्थिति की पुष्टि करती हैं। यहाँ के पाषाणों का उपयोग मन्दसौर दुर्ग के निर्माण में किया गया था। अवशिष्ट पत्थरों का ग्रामीण-जनों ने अपने घरों में उपयोग कर लिया। यहीं एक प्राचीन वापी भी है। यह स्थान प्राचीन काल में पर्याप्त प्रसिद्ध था और दशपुर का अभिज्ञान बन गया था। क्योंकि एक और दशपुर विदर्भ में दलिचपुर के निकट था जो ८१० ई० में दान में दे दिया गया था। यह आज दसुर कहलाता है। विदर्भ के दशपुर से इस मालवा के दशपुर की भिन्न प्रतीति के लिए इसके पास के प्रसिद्ध 'मठ' को संयुक्त कर इसे मठ दशपुर कहा जाने लगा जिससे एक निश्चित नगर का ही ज्ञान हो सके। इस संयुक्त नाम का ही अपभ्रंश आज का मन्दसौर शब्द है—मठदशपुर→मडदसउर→मँडदसौर→मन्दसौर। सुप्रसिद्ध इतिहासविद् महाराज कुमार डॉ० रघुवीरसिंहजी का भी यही अभिमत है। इस सुप्रसिद्ध मठ के समीप गोजाना गाँव के पूर्ववर्ती कूप के तट पर अष्टभुजी विष्णु तथा पार्वती की एक मनोरम प्रतिमा है। विष्णु की प्रतिमा लगभग तीन फुट ऊँची एवं हल्के काले स्निग्ध पत्थर से निर्मित है जिसे सिन्दूर से पोत दिया गया है। यह परमारयुगीन प्रतीत होती है। मूर्ति के हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, खांडा, धनुष इत्यादि हैं। निकटवर्ती चबूतरे पर वटमूल में शिव, पार्वती, नाग, यक्ष तथा शालभंजिकाओं की हृदयाकर्षक प्रतिमाएँ हैं।

परमार युग में मूर्तिकला पुनः व्यापक रूप से लोकप्रिय हुई। इस काल में पर्याप्त मन्दिर एवं मूर्तियाँ सरजी गयीं। पहले जितनी बौद्ध प्रतिमाएँ निर्मित होती थीं उससे अधिक अब जैन प्रतिमाएँ निर्मित होने लगीं।

मेघदूत के देवगिरि (वर्तमान देवडूंगरी) के निकट महुगाँव के उत्तर में एक प्राचीन देवालय में दशावतार की मनोरम प्रतिमाएँ भित्ति में खचित हैं। वराह, नृसिंह इत्यादि की प्रतिमाएँ अत्यन्त मनोहर बन पड़ी हैं। प्रधान प्रतिमा चतुर्भुज विष्णु की है जिसे महिलोचित परिधान पहनाकर ग्रामवासी देवी के रूप में पूजते हैं। ग्राम्यों ने विष्णु को उनका मोहिनी रूप दे दिया, अज्ञान में भी सचाई की रक्षा हो गयी। बदनावर में बैजनाथ मन्दिर के चत्वर पर वराह की मनोरम प्रतिमा है। ऐसी एक प्रतिमा सीतामऊ के निकट गाँव लदूना के तालाब के तट पर है।

भेलसा में चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा ८-९वीं सदी की है। सिर के पीछे प्रभामण्डल है, गले में वैजयन्तीमाला। उज्जैन से आठ किलोमीटर दूर कमेड़ (यह शब्द सम्भवतः कमठ का अपभ्रंश है) में १०वीं सदी की चतुर्भुज प्रतिमा शोभित है। माण्डू से प्राप्त एक विष्णु प्रतिमा उड़ते गरुड़ पर सवार है जिसके वामोरु पर लक्ष्मी आसीन है। धमनार के धर्मनाथ मन्दिर के द्वार पर लक्ष्मीनारायण की प्रतिमाएँ हैं। धार से भी



लक्ष्मी सहित विष्णु की प्रतिमा उपलब्ध हुई है। ग्यारसपुर के हिंडोला द्वार पर दशावतार की प्रतिमाएँ हैं। घमनार के उपर्युक्त मन्दिर में भी दशावतार का आकर्षक अंकन हुआ है। बड़ोह तथा करोहन् से भी वराह प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

हिरण्यकशिपु का हनन करते नृसिंह की एक प्रतिमा टोंगरा में प्राप्त होती है। कोहला के वराह मन्दिर में वराह के अतिरिक्त नृसिंह की भी प्रतिमा है। सुनारी तथा बड़ोह में विष्णु के एक अवतार बुद्ध को भी शिलांकित किया गया है। घमनार के पूर्वोक्त मन्दिर में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा प्रदर्शित है जिसकी नाभि-कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। नारायण पर मधु तथा कैटभ आक्रमण करते हैं परन्तु उन्हें वे नष्ट कर देते हैं। माण्डू की लोहानी गुहा के निकट से शेषशायी की सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। जिस पर १२५८ संवत् उत्कीर्ण है। धार से ब्रह्मा एवं दशावतार सहित शेष की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसी प्रकार झारडा से शेषशायी विष्णु की एवं अनन्तशय्या की दूधाखेड़ी से प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

प्राचीन मन्दिरों की भित्ति तथा स्तम्भों पर रामायण एवं महाभारत के दृश्य अंकित पाए जाते हैं। रामायण का ऐसा ही दृश्य सन्धाना से उपलब्ध हुआ है। बड़ोह के गडरमल मन्दिर में कृष्ण-यशोदा का अंकन है। हुमैन के प्राचीन मन्दिर में भी कृष्णकथाएँ अंकित हैं। मोड़ी के पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में कृष्णजीवन से सम्बद्ध अनेक दृश्य उत्कीर्ण हैं।<sup>१०</sup>

परमार मूलतः शैव थे। इस काल में अनेक शैव प्रतिमाएँ निर्मित हुईं। शिव की वाम-जंघा पर आसोन पार्वती की प्रतिमाएँ मालवा के प्रायः सभी प्राचीन स्थलों में देखी जा सकती हैं। उज्जैन में तो ये विपुल मात्रा में मिलती हैं। झालरापाटन में परमारयुगीन नृत्यशिव की सुन्दर प्रतिमा प्राप्त होती है। घमनार के पूर्वोक्त मन्दिर में ताण्डव करते शिव अंकित हैं। इनके पास नन्दी एवं नृत्य करती देवियाँ भी प्रदर्शित हैं—नन्दी सहित पार्वती, गरुडासीन वैष्णवी, ऐरावतासीन इन्द्राणी, हंसासीन ब्रह्माणी। उज्जैन से उपलब्ध नृत्यशिव की एक प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित है। यह पाँच फीट ऊँची तथा दशभुजात्मक प्रतिमा गजासुर का वध करती बतायी गयी है। रामगढ़ के शिव मन्दिर में भी दशभुज शिव की प्रतिमा प्राप्त होती है। वे त्रिभुवन में नृत्य करते प्रदर्शित हैं जिनके समक्ष समस्त देववर्ग भी बौना प्रदर्शित है।

उज्जैन के निकट आगर में नन्दी पर आसीन शिव-पार्वती की प्रतिमा प्राप्त होती है। ग्यारसपुर से भी शत्रुहन्ता शिव की प्रतिमा प्राप्त होती है। त्रिपुरारि शिव झारडा में प्रदर्शित हैं। उदयपुर पहाड़ी की ढलान पर एक विशाल पाषाण पर अपूर्ण शिव प्रतिमा बनी है। इसके छः हाथ हैं यह २६ फीट ऊँची एवं १२ फीट ७ इंच चौड़ी है। चरण नृत्यमुद्रा में हैं जिसके नीचे कोई राक्षस कुचला जा रहा है। गले में नाग,

१० डॉ० के० सी० जैन, मालवा यू. द एजेज, पृ० ४५५.

जिसका फण वक्ष पर प्रदर्शित है। जटा मुकुट रूप में है। स्थानीय लोग इसे रावण बताते हैं परन्तु ये भोमशंकर हैं। मोड़ी के मन्दिर में लकुलीश की प्रतिमा है। ग्यारसपुर में कटरमल भैरव की प्रतिमा है जिनके हाथ में कटार है। मोड़ी में भी भैरव प्रतिमा है जिसके बायीं ओर उनका वाहन श्वान खड़ा है।

विक्रम संवत् १२१० की एक ब्रह्मा की प्रतिमा बाघ से प्राप्त होती है। मामोन में भी ब्रह्मा की प्रतिमा प्राप्त होती है। लदूना के तडाग के तट पर ब्रह्मा की प्रतिमा थी जिसे तस्कर चुरा ले गये। धौली तथा दूँढेरी में भी अन्य देवों के साथ ब्रह्मा भी अंकित हैं। उज्जैन के बिलोहीपुरा में एक पत्थर पर अन्य मूर्तियों के साथ ब्रह्माणी की प्रतिमा भी रखी है।

गन्धवास में पाँच फीट ऊँची खड़े सूर्य की प्रतिमा है। झारड़िया के देवालय मण्डप में सूर्यप्रतिमा अंकित है। १०वीं सदी की चन्द्रप्रतिमा का सिर भेलसा में प्राप्त है।

उज्जयिनी के विश्वविद्यालयीन पुरातत्व संग्रहालय में अनेक प्रतिमाएँ शोभित हैं। खड्वांगधारी शिव, नटराज, खण्डित शिवप्रतिमा, गयासुर संहार करती शिवप्रतिमा, योगरत शिव, चतुर्भुजी भैरव, चतुर्मुखी शिवप्रतिमा जिसकी मुखमुद्रा सौम्य है, नन्दी पर आरूढ़ शिव-पार्वती, ताण्डव करते शिव एवं लास्य करती पार्वती की संयुक्त प्रतिमा, तापसी पार्वती, चामुण्डा (कालभैरव के निकट से प्राप्त) तथा चामुण्डा की एक अन्य प्रतिमा शहर से प्राप्त हुई है। सप्तमातृका, वैष्णवी, ब्रह्माणी, सप्तमातृका, गणपति, नृत्यगणपति, कार्तिकेय इत्यादि की प्रतिमाएँ यहाँ से प्राप्त होती हैं। क्षिप्रा नदी से चषक लिए अश्वारोही की सचमुच सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। विष्णु, सूर्य, बुद्ध, महावीर तथा देवियों की कई प्रतिमाएँ यहाँ से उपलब्ध हुई हैं।

भेलसा, गंधरावल, मोड़ी, झारड़िया, सुहानिया, झारडा तथा घमनार से विविध देवियों की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। सुहानिया से अग्नि तथा वायु की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। मन्दिर के द्वार गंगा तथा यमुना के अंकन से युक्त हैं जैसे विदिशा की वराह प्रतिमा के साथ इनका अंकन हुआ है।

ई० सन् १०३४ में मनथल द्वारा निर्मित वाग्देवी की प्रतिमा पहले धारा की भोजशाला में थी और अब ब्रिटिश संग्रहालय में सुशोभित है। यह राजा भोज के शासनकाल में निर्मित हुई थी। यह चतुर्भुजी प्रतिमा अभंग मुद्रा में खड़ी है। मुकुट तथा कुण्डल, हार एवं करधनी पहने इस प्रतिमा की मनोहर काया कुशल कलाकार के हाथों हृद समाधि में सरजी गयी। इसका अद्भुत सौन्दर्य तथा सन्तुलन का छन्द अद्वितीय है। शिवराम मूर्ति इसे भोजकालीन श्रेष्ठ प्रतिमा का उदाहरण मानते हैं। इसी आकृति की एक सरस्वती प्रतिमा बदनावर के वैद्यनाथ मन्दिर के प्रांगण में प्रदर्शित है।

नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित दशभुजा दुर्गा दभोई दुर्ग से प्राप्त है। वह वाग्देवी की प्रतिमा के ही समान सुन्दर है। धार से उपलब्ध श्वेत संगमरमर की मनोरम पार्वती-प्रतिमा भी अनोखी है। यह उदयादित्य के समय निर्मित हुई थी। सुहानिया, ग्यारसपुर, उदयपुर इत्यादि में परमारयुगीन गणेश प्रतिमाएँ हैं। बडोह में नृत्यगणेश की प्रतिमा है, उज्जैन के समान। भोजपुर में अनेक प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ का शिवलिंग साढ़े सात फीट ऊँचा है। साथ ही यहाँ कुबेर की भी प्रतिमा प्राप्त होती है। घुसई से हरिहर की प्रतिमा प्राप्त होती है। पाली से उपलब्ध एवं झालावाड़ में प्रदर्शित अर्धनारीश्वर की प्रतिमा भी सुन्दर है। ग्यारसपुर, पछवाली इत्यादि स्थानों से त्रिमूर्ति की आकर्षक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। झालरापाटन में एक अष्टभुजी प्रतिमा है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सूर्य—चार देवता एक शरीर-रूप में अंकित हैं।

कागपुर से आठवीं सदी की मयूरासीन कार्तिकेय प्रतिमा, उज्जैन से कपिल मुनि की प्रतिमा, उज्जैन से ही नागयुग्म की प्रतिमा उपलब्ध हैं। मोड़ी से कल्पवृक्ष तथा कामधेनु का अंकन प्राप्त है। दूदाखेड़ी तथा झारड़ा से भी कामधेनु की लघु प्रतिमा प्राप्त होती है।

परमार युग में मनोहर जैन पाषाण प्रतिमाएँ निर्मित हुईं। उनके शरीर सन्तुलित तथा मुखमुद्रा आकर्षक हैं। ममोन से तीर्थंकर की ८ फीट १० इंच ऊँची प्रतिमा प्राप्त होती है। परिचर के रूप में दो यक्ष व्यक्त हुए हैं तथा लघुरूप में कई तीर्थंकर प्रदर्शित हैं। मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है। कागपुर से चौमुख की अनोखी प्रतिमा प्राप्त हुई है। भोजपुर के जैन मंदिर में २० फीट ऊँची आदिनाथ की प्रतिमा है। साथ ही इन्द्र सहित पाश्वर्नाथ भी प्रदर्शित हैं। गंधावल में अधिकांश जैन प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें से कुछ १० फीट तक ऊँची हैं। उन के जैन मंदिरों से भी १२-१३वीं सदी की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। चैनपुर में १३ फीट ३ इंच ऊँची तीर्थंकर प्रतिमा प्राप्त होती है। चन्देरी के जैन मन्दिर में पाश्वर्नाथ की प्रतिमा सं० १२५२ की तथा तीर्थंकर की अन्य प्रतिमा संवत् १३१६ की है। वहीं १२६१ संवत् की पद्मावती देवी की प्रतिमा भी है। झारड़ा में जैन देवियों की दो प्रतिमाएँ एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर सिंहासनासीन हैं। उनके आठ भुजाएँ हैं। संवत् १२२६ में निर्मित प्रथम प्रतिमा अधिक पूर्ण है। इसके हाथ में विटप, धनुष, अंकुश, पाश, अक्षसूत्र इत्यादि हैं। तीन हाथ खण्डित हैं। एक वृषभ नीचे खड़ा है तथा अनुचर भी प्रदर्शित हैं। द्वितीय प्रतिमा १२२६ संवत् की है। इसका सिर नहीं है, नष्ट हो गया है। इन दोनों प्रतिमाओं के पयोधर पीन होने से ग्रामवासी इन्हें 'बोवावारी माता' कहते हैं। ऐसी प्रतिमाओं को भोज 'सुस्तनी सुस्तना प्रतिमा' कहता है (शृंगार प्रकाश, पृ० २६५)।

उज्जैन के दिगम्बर जैन संग्रहालय में कुल ५१६ प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं जिनमें से ५६ लेखयुक्त हैं। आदिनाथ या ऋषभनाथ की ३७ प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुविधिनाथ, शान्तिनाथ,

मुनि सुव्रतनाथ, नेमिनाथ के साथ ही सर्वाधिक पार्श्वनाथ एवं महावीर की प्रतिमाएँ हैं। पद्मासन में ध्यानस्थ पार्श्वनाथ की एक सुन्दर प्रतिमा है जिसके दोनों ओर यक्ष तथा यक्षिणी हैं। इनकी देहयष्टि आकर्षक है। हाथी पर राजपुरुष, चंवरधारी इत्यादि हैं। यह गुना से लायी गयी है। प्रतिमा को सप्तफण छाया किए हैं। पार्श्वनाथ की यहाँ ६४ प्रतिमाएँ हैं। जैन देवियों की भी यहाँ अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। बदनावर की चक्रेश्वरी प्रतिमा अपनी भग्नाकाया में भी अद्वितीय है। इन प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षी, नाग, वृक्ष इत्यादि का भी मनोहर अंकन हुआ है।<sup>११</sup>

परमार युग में कला एवं साहित्य के मर्मज्ञ नृपों की मालवा में अद्वितीय परम्परा रही है जिनमें मूर्धन्य भोज का कलाबोध परवर्ती युग में भी अपमान बन गया—बोधे कलानां नवभोजराजः। इस भोज ने अनेक मन्दिर तथा उनमें प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं जिनका अभिज्ञान असम्भव हो रहा है। केवल पूर्वोक्त वाग्देवी प्रतिमा उसके कलाबोध का प्रमाण बन जाती है। भोज अपने शृंगार प्रकाश में प्रतिमा की सौम्य काया के सृजन पर बल देता है। वह यह भी मानता है कि ऐसी प्रतिमा की रचना सरल नहीं है—

सौम्या मूर्तिः प्रतिमाया इति । अहो दुःखं रूपं लेख्यस्य ।

करुणापूरित अंकन भी उस काल में कम आकर्षक नहीं होते थे। पाषाण पर वासुदेव का उत्कीर्णन, पूर्वोक्त सुस्तनी प्रतिमाओं का उभार, भित्ति पर कामदेव की रचना एवं ध्वज पर हनुमान का आलेख.....सबकी ओर भोज का संकेत हुआ है।<sup>१२</sup> (शृंगार प्रकाश, पृ० २०४)।

ऐसे कलापारखी राजा की रचना शृंगारमंजरी कथा में भी कला सम्बन्धी अद्भुत सामग्री भरी है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार कलाकोष के निर्माण में इस कृति का कम महत्त्व नहीं रहेगा। ऐसे भोज तथा उसकी रसिक वंशमाला के राज्यकाल में यदि ग्रन्थों तथा भवनों के समान अनन्त-अनन्त आकर्षक मूर्तियाँ भी रची जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। पुनः परमार युग तो जैनधर्म को भी उतना ही आदर देता था जितना ब्राह्मण धर्म को। उस काल में सब धर्मों को सम्यक् राज्याश्रय प्राप्त था। यही कारण है कि इस काल में सब धर्मों से सम्बद्ध हर प्रकार की मनोहर मूर्तियों का सृजन हुआ।

यह वह काल है जब इतर प्रदेशों में भी मूर्तिकला के प्रति आकस्मिक अपेक्षा-भाव आगया था। यद्यपि इस काल में अन्यत्र भी मूर्ति रचना हुई पर जिस मात्रा तथा जिस आकर्षण से युक्त मालवा में मूर्तियाँ रची गयीं। वह न इससे पूर्व दिखाई देती है एवं न बाद में।

भारतीय मूर्तिकला को मालवा के दाय का यह संक्षिप्त सर्वेक्षण व्यक्त करता है

११ मालवा : एक सर्वेक्षण, पृ० ६५

१२ द्रष्टव्य—लेखक का लेख, भोज का कलाबोध, मध्यप्रदेश सन्देश, ७ जून १९७५

कि शुककल, गुप्तकल तथल परमलरयुग में मलवल ने भरतीयकल की कु ःदुध की है वह उपेक्षणीय नहीं हु सकती । मूर्तिकल के वलदलशल, सलँकी तथल परलतः क्षेत्र, उजुजयलनी, धलरल एवं परलतः क्षेत्र केन्द्र रहे हैं । यहाँ देवतल एवं प्रकृतल कल ही कलत्रण नहीं हुआ अपलतु रलकुल एवं प्रकुल कु एक सलथ भी प्रस्तुत कलल गलल है । सलँकी में प्रकुल एवं रलकुल, सलधनल और श्रम, रलकुधर्म तथल लुक धर्म कल जैसल समन्वय पललल कुतल है वह अनुतुर सरलतल से सुलभ नहीं है । प्रतलमल-वलकुनलन कल सैदुधलनतिक तथल वुवलहलरलक कु वलकलस यहाँ हुआ वह परवर्ती कलल में अनुतुर प्रदेशों के ललए भी अनुकरणीय रहा । भुक के युग की वलगुदेवी की प्रतलमल कल अनुकरण परवर्तीकलल में भी हुतुल रहा यदुधपल अनुकर्तल उस स्तर तक सफलतल नहीं पल सके । स्वयं भुक ने समरलंगणसूत्रधलर में मूर्तल वलषयक परुतुत वलवरण प्रस्तुत कर कललवन्तुओं कु उस ओर प्रेरलत कलल है ।<sup>१</sup>



१ न कुने कुतुं, श्वेतलम्बर मूर्तिकलल की ओर लेखक की दृषुतल नहीं कुल सकी है, कुबकल कलल की दृषुतल से उसकल भी अपना वलशलषुतल स्थलन है । —सम्पलदक